ओ३म्

**‘एक दलित आर्य स्वामी अनुभूतानन्द जी का प्रेरक व समर्पित जीवन’**

लेखक: मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

स्वामी अनुभूतानन्द दलितों व पिछड़ों के सच्चे हितैषी व श्रेष्ठ कर्मयोगी पुरूष थे। आप एक दलित परिवार में जन्में थे। पांच हजार वर्ष पूर्व हुए महाभारत के पश्चात अज्ञानता के युग मध्यकाल में किसी समय हमारे तथाकथित पण्डित वर्ग ने अपने अज्ञान व स्वार्थो के कारण गुण, कर्म व स्वभाव पर आधारित वर्ण व्यवस्था को जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था में बदल दिया था और आर्य वर्ण के परिश्रमी शूद्र वर्ण के पुरूषों व स्त्रियों को उनके ईश्वर प्रदत्त प्राकृतिक अधिकारों यथा विद्याध्ययन, सह-अस्तित्व व समानता आदि के अधिकार से वंचित कर दिया था। स्वामीजी का दलित परिवार में जन्म होने के कारण उन्हें इन बन्धुओं की समस्याओं का ज्ञान तो था ही साथ हि इन बन्धुओं के प्रति सहानुभूति व इनके कल्याण की भावना भी उनमें स्वाभाविक रूप से विद्यमान थी। आर्य समाज ने दलितोद्धार का जो अभूतपूर्व ऐतिहासिक कार्य किया है उसमें स्वामीजी के द्वारा किये गये कार्यो का भी गौरवपूर्ण स्थान है।

पुरोवाक्

 स्वामीजी अनुभूतानन्दजी आर्य समाज के बहुमूल्य रत्न थे। दलित परिवार में जन्में स्वामी जी के मन में आर्य समाज व वेद प्रचार ष्वांस-प्रष्वास में बसा था। आर्य समाज को आप पर गर्व है। आर्य समाज की ओर से कृतज्ञता ज्ञापन हेतु यह लेख उस दिव्य आत्मा को श्रद्धांजलि के रूप में प्रस्तुत है।

-मनमोहन कुमार आर्य

मनमोहन कुमार आर्य

स्वामीजी का जन्म 112 वर्ष पूर्व सन् 1901 में वर्तमान पंजाब राज्य के अन्तर्गत पटियाला के **“मानसा”** स्थान में हुआ था। आप दलित वर्ग की चूहड़ा बिरादरी में जन्में थे। स्वामी अनुभूतानन्द जी के पिता द्वारा दिया गया नाम ठाकुरसिंह था। हिसार-सिरसा में आपके चाचा जलाल आणा रहा करते थे। इन चाचा से मिलने आप यदा-कदा जाया करते थे। जिस प्रकार लोहा पारस पत्थर के सम्पर्क में आकर अपने पूर्व गुण़ों का त्याग कर स्वर्ण के गुणों को धारण करता है, उसी प्रकार सज्जनों की संगति से मनुष्य बुराईयों व दुर्गुणों को त्याग कर सद्गुणों को धारण करता है। वेद मन्त्र, **“ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव”** महर्षि दयानन्द सरस्वती का प्रिय मंत्र रहा है और इसका उन्होंने प्रतिदिन व प्रत्येक शुभ अवसर पर की जाने वाली स्तुति, प्रर्थाना व उपासना के 8 मन्त्रों में विधान किया है। यह मन्त्र हमें ईश्वर की संगति व उपासना से बुराईयों को त्याग कर भद्र अर्थात् शुभ या कल्याणकारी गुणों, कर्मों, स्वभाव व कर्मों को धारण करने की शिक्षा व प्रेरणा देता है। सौभाग्य से स्वामी अनुभूतानन्दजी की एक आर्य मिशनरी मुंशी महाशय कृष्णचन्द्र, जो पहले मुंशी कालेखां के नाम से जाने जाते थे, भेंट हुई। भेंट में मुंशी जी ने युवक ठाकुरसिंह की सामाजिक व शिक्षा की स्थिति जानने के बाद इन्हें विद्याध्ययन की प्रेरणा की। उस समय के सामाजिक वातावरण एवं दलित परिवार का होने के कारण आपने निराशा के स्वरों में मंुशीजी से कहा कि मैं दलित हूं, मुझे कौन पढ़ायेगा? मुंशी जी ने आपको उत्साहित करते हुए कहा कि आप निश्चय कीजिये, आपको मैं पढ़ाऊगां। उनके सहमत होने पर मुंशीजी ने आपको भाषा का आरम्भिक ज्ञान करा दिया। और आगे पढ़ने की व्यवस्था भी कर दी। आपने संस्कृत व्याकरण के ग्रन्थ लघु कौमुदी के अध्ययन से आरम्भ किया। मुंशीजी अध्यापन कराने के साथ आपको आर्थिक सहायता भी प्रदान करते थे। आप अध्ययन आगे अध्ययन के लिए आर्य समाज के एक शीर्षस्थ संन्यासी स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती के पास गये। स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी के अनुसार आप उच्च कोटि के तितिक्षु थे। जब आप स्वामीजी के पास पढ़ने के लिए पहुंचे थे, उस समय आप वस्त्र नहीं पहनते थे, आपकी उस समय की वेशभूषा टाट का एक कौपीन या जांघिया होता था तथा टाट का ही एक अंगोछा आप रखा करते थे। हमारे चरितनायक स्वामी अनुभूतानन्द जी ने सिरसा, फगवाड़ा-कपूरथला, जगरांवां-लुधियाना, दयानन्द उपदेशक विद्यालय, लाहौर और तातारपुर-होशियारपुर आदि स्थानों पर शिक्षा प्राप्त की। आर्य समाज की सेवा, वेदों का प्रचार व प्रसार तथा दलित बन्धुओं की शिक्षा द्वारा उन्नति को आपने जीवन का लक्ष्य बनाया। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप जिये और मात्र 40 वर्षो की अल्प आयु में ही आपका अवसान हो गया। मुंशी महाशय कृष्ण चन्द्र जी ने आपका जो मार्गदर्शन और आर्थिक सहायता की उससे वह भी अमरत्व को प्राप्त हो गये।

स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी के अनुसार गुरू-सेवा की भावना आप में उत्कर्ष को प्राप्त थी। जगरांवां में सभी गुरूओं को आपने अपनी सेवा व व्यवहार से अपने वश में किया हुआ था। यहां एक बार आपने एक अध्यापक को कहा कि पण्डितजी मैं जन्म का अछूत हूं। पण्डित जी ने इनकी भावनाओं का समझकर इन्हें प्रेरणा की कि कोई बात नहीं किन्तु आप सावधान रहें और अपनी जन्मगत जाति का परिचय किसी को न दें। यहां से चलकर आप होशियारपुर में दातारपुर स्थित वैरागियों के मन्दिर के अन्तर्गत संचालित संस्कृत पाठशाला में अध्ययन करने हेतु पहुंचे। दातारपुर के लोग आर्य समाज के विरोधी थे। वे न तो यहां आर्य समाज के उपदेश आदि होने देते थे न ही आर्य समाज का मन्दिर बनने देते थे। पाठशाला के विद्यार्थी भी इसी मानसिकता थे। एक बार पाठशाला में पढ़ाते हुए कक्षा के अध्यापक एक पण्डितजी ने गर्वोक्ति में कहा कि उनके प्रयासों से आर्य समाज वहां समाज-मन्दिर स्थापित करने में सफल नहीं हुआ और न कभी होगा। इसका हमारे स्वामी अनुभूतानन्द जी ने विरोध किया जो वहां उनके विद्यार्थी थे और पण्डितजी को कहा कि आपका कथन सत्य नहीं है। आर्य एक बार यदि निश्चय कर लें तो वह कार्य अवश्यमेव होता है। उन्होंने अभी निश्चय ही नहीं किया होगा। इस पर अध्यापक पण्डित जी बोले, तो आप ही आर्य समाज मन्दिर बनवा कर दिखा दें। स्वामीजी ने चुनौती स्वीकार कर ली और गम्भीर मुद्रा में बोले कि मैं ही इसका निश्चय करता हूं। इसके साथ पाठशाला व अपने अध्ययन का परित्याग कर दिया। इस प्रतिज्ञा के बाद स्वामीजी ने दातारपुर के एक बरसाती खड्ड के किनारे अपना आसन जमाया। रात-दिन वहीं रहे। केवल शौच या भिक्षा के लिए ही कुछ समय के लिए आस-पास जाते थे और शेष समय वहीं अकेले मौन बैठे रहते थे। यदि कोई आ गया तो उससे चर्चा करते थे। साधना व तप से चमत्कार हुआ और एक भूमिधर राजपूत प्रभावित हुआ। स्वामीजी के पास आकर श्रद्धापूर्वक उसने पूछा कि स्वामीजी कोई सेवा बताईये। स्वामीजी ने अपनी इच्छा प्रकट करते हुए कहा कि उन्हें थोड़ी भूमि चाहिये जहां आर्यसमाज मन्दिर बनवा कर वेद व धर्म प्रचार कर सकें। ईश्वरीय अन्तःप्रेरणा को प्राप्त उस राजपूत बन्धु ने स्वामीजी को भूमि प्रदान कर दी जिसकी स्वामीजी ने आर्य प्रादेशिक सभा के नाम रजिस्ट्री करा दी। तत्पश्चात स्वामीजी ने भिक्षा आरम्भ कर उस भूमि पर समाज मन्दिर व एक कुंआ भी बनवा दिया। यह घटना आर्य समाज के सभी अनुयायियों के लिए अनुकरणीय है।

इसके बाद भ्रमण करते हुए स्वामीजी होशियारपुर के गढ़दीवाला स्थान पर पहुंचे। आपने वहां के लोगों से पूछा कि भाईयों क्या यहां कोई आर्यसमाज है? उन लोगों ने उत्तर न देकर स्वामीजी को गालियां व अपशब्द कहे। कुछ समय बाद स्वामीजी ने अपनी मर्यादा के अनुसार वहीं जमकर गीता की कथा व उपदेश करना देना आरम्भ कर दिया। कथा कई मास चली। लोगों पर कथा का उत्तम प्रभाव हुआ जिससे अनेक लोग वैदिक धर्मी बन गये। दान व धनसंग्रह कर स्वामीजी द्वारा भूमि खरीदी और वहां आर्यसमाज तथा पाठशाला बनाने के लिए उसे लाला देवीचन्द को सौंप दिया। यहां से स्वामीजी आदमपुर द्वाबा आये। यहां समाज मन्दिर के निर्माणार्थ भूमि उपलब्ध थी और उस भूमि में एक कुंआ भी था। स्वामीजी ने धनसंग्रह कर यहां आर्यसमाज मन्दिर बनवा दिया। यहां मन्दिर निर्माण में स्वामीजी के शिष्य श्री विमलानन्द ने उनको पूरा सहयोग किया। “आर्य” मासिक पत्रिका के वैशाख, सन् 1942 के लेख में स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने उनके व्यक्तित्व का चित्रण करते हुए लिखा है कि स्वामीजी का शरीर का रंग अत्यन्त काला था किन्तु हृदय अत्यन्त धवल था। दलितों के लिए उनके हृदय में अपार करूणा विराजती थी। स्वामीजी ने सारी आयु कहीं व्याख्यान नहीं दिया और न कहीं कोई शास्त्रार्थ ही किया। केवल लोगों में बातचीत के द्वारा प्रचार किया। इस प्रकार उपदेशात्मक व लिखित प्रचार न कर स्वामीजी ने मूकभाव से प्रचार कर हजारों रूपयों की सम्पत्ति आर्यसमाज के कार्यो के लिए प्राप्त की और अनेक दलित विद्यार्थियों को विद्यार्जन कराकर स्वावलम्बी तथा समाज का उपयोगी अंग ही नहीं बनाया अपितु उन्हें आर्यसमाज से जोड़कर समाज व वेद प्रचार की नींव को सुदृण किया। इन सब गुणों के साथ-साथ स्वामीजी का स्वभाव शान्त व निरभिमानी था तथा वह अपने संकल्पों के पालक व धनी थे। आपका स्वार्गारोहण 8 अप्रैल, 1941 को 40 वर्ष की आयु में आदमपुर-द्वाबा में हुआ।

दलित वर्ग के बालकों की परिस्थितियां एवं समस्यायें स्वामीजी को कुछ करने को प्रेरित करती थी। आपने दलितोद्धार के क्षेत्र में दलित बालकों के विद्याध्ययन का कार्य जी-जान से किया। मृत्यु से पूर्व आपने स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को बताया था कि भिक्षा से लगभग पचास हजार रूपये इकट्ठे करके उन्होंने दलितों की शिक्षा पर लगाये थे। स्वामीजी ने दलितों की शिक्षा के लिए कोई संस्था खड़ी नहीं की अपितु बालकों की आवश्यकता, अभिरूचि व क्षमता के अनुसार उपयुक्त शिक्षण संस्था में अपने व्यय से उनकी शिक्षा की व्यवस्था की। स्वामीजी के प्रयासों से अनेक दलित बन्धुओं ने बी.ए., एफ.ए. व मैट्रिक किया, कुछ वैद्य बने और कुछ संस्कृत के अध्यापक बने। आपने शिक्षित दलित बन्धुओं की आजीविका का भी प्रबन्ध किया।

स्वामीजी के जीवन से अनुभव होता है कि आप उच्च श्रेणी के ईश्वरोपासक भी अवश्य रहे होंगे। जो गुण उन्होंने धारण किए हुए थे, वह उच्च श्रेणी के ईश्वरोपासक को ही प्राप्त होते हैं। जीवन का लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष है। हम अनुभव करते हैं कि स्वामीजी ने जैसा जीवन व्यतीत किया तथा इस जीवन में उनके जो संचित कर्म बने, उससे उनका परलोक निश्चित रूप से कल्याणप्रद हुआ होगा। स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी ने अपने समय में उन पर लेख लिख कर उन्हें अमर कर दिया। स्वामी स्वतन्त्रानन्द के इतिहास विषयक लेखों का पुनरूद्धार आर्य समाज के प्रख्यात विद्वान प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु ने स्वसम्पादित पुस्तक इतिहास दर्पण में प्रकाशित करके उन लेखों के चरित नायकों व आर्य श्रेष्ठियों को अमर कर दिया। हम स्वामी अनुभूतानन्द जी के प्रेरणादायक जीवन व सामाजिक हित के कार्यों को स्मरण कर उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196, चुक्खूवाला-2,**

**देहरादून-248001**

**फोनः 09412985121**